भारत मे ब्रिटिश शासन का विरोध : एक विवेचना

Shrichand Kamat , skamat15@gmail.com

सार

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष का विदेशों से व्यापारिक संबंध था । व्यापार स्थल और जल दोनों मार्गों से होता था। इन मार्गों पर एकाधिकार प्राप्त करने के लिए अन्य राष्ट्रों में समय-समय पर संघर्ष हुआ करता था। जब इस्लाम का उदय हुआ और अरब, फारस मिस्र और मध्य एशिया के विविध देशों में इस्लाम का प्रसार हुआ, तब धीरे-धीरे इन मार्गों पर मुसलमानों का अधिकार हो गया और भारत का व्यापार अरब निवासियों के हाथ में चला गया। अफ्रीका के पूर्वी किनारे से लेकर चीन समुद्र तट पर अरब व्यापारियों की कोठियां स्थापित हो गईं। यूरोप में भारत का जो माल जाता था वह इटली के दो नगर जिनेवा और वेनिस से जाता था। ये नगर भारतीय व्यापार से मालामाल हो गए। वे भारत का माल कुस्तुन्तुनिया की मंडी में खरीदते थे। इन नगरों की धन समृद्धि को देखकर यूरोप के अन्य राष्ट्रों को भारतीय व्यापार से लाभ उठाने का भरसक प्रयास किया । बहुत प्राचीन काल से ही यूरोप के लोगों का अनुमान था कि अफ्रीका के रास्ते भारतवर्ष तक समुद्र द्वारा पहूँचने का कोई न कोई मार्ग अवश्य होगा ।

मुख्य शब्द: भारतवर्ष, व्यापार, प्राचीन काल, संघर्ष, एकाधिकार आदि।

परिचय

चौदहवीं शताब्दी में यूरोप में एक नए युग का प्रारंभ हुआ। नए-नए भौगोलिक प्रदेशों की खोज आरंभ हुई। कोलम्बस ने सन् 1492 ईस्वी में अमेरिका का पता लगाया और यह प्रमाणित कर दिया कि अटलांटिक के उस पार भी भूमि है। पुर्तगाल की ओर से बहुत दिनों से भारतवर्ष के आने के मार्ग का पता लगाया जा रहा था। अंत में, अनेक वर्षों के प्रयास के अनंतर सन् 1498 ई. में वास्कोडिगामा शुभाशा अंतरीप (cape of good hope) को पार कर अफ्रीका के पूर्वी किनारे पर आया; और वहाँ से एक गुजराती नियामक को लेकर मालाबार में कालीकट पहुंचा।

पुर्तगालवासियों ने धीरे-धीरे पूर्वी व्यापार को अरब के व्यापारियों से छीन लिया। इस व्यापार से पुर्तगाल की बहुत श्री-वृद्धि हुई। देखा-देखी, डच अंग्रेज और फ्रांसीसियों ने भी भारत से व्यापार करना शुरू किया। इन विदेशी व्यापारियों में भारत के लिए आपस में प्रतिद्वंद्विता चलती थी और इनमें से हर एक का यह इरादा था कि दूसरों को हटाकर अपना अक्षुण्य अधिकार स्थापित करें। व्यापार की रक्षा तथा वृद्धि के लिए इनको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि अपनी राजनीतिक सत्ता कायम करें। यह संघर्ष बहुत दिनों तक चलता रहा और अंग्रेजों ने अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त की और सन् 1763 के बाद से उनका कोई प्रबल प्रतिद्वंदी नहीं रह गया। इस बीच में अंग्रेजों ने कुछ प्रदेश भी हस्तगत कर लिए थे और बंगाल, बिहार, उड़ीसा और कर्नाटक में जो नवाब राज्य करते थे वे अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली थे। उन पर यह बात अच्छी तरह जाहिर हो गई थी कि अंग्रेजों का विरोध करने से पदच्युत कर दिए जाएंगे।

यह विदेशी व्यापारी भारत से मसाला, मोती, जवाहरात, हाथी दांत की बनी चीजें, ढाके की मलमल और आबेरवां, मुर्शीदाबाद का रेशम, लखनऊ की छींट, अहमदाबाद के दुपट्टे, नील आदि पदार्थ ले जाया करते थे और वहां से शीशे का सामान, मखमल साटन और लोहे के औजार भारतवर्ष में बेचने के लिए लाते थे। हमें इस ऐतिहासिक तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि भारत में ब्रिटिश सत्ता का आरंभ एक व्यापारिक कंपनी की स्थापना से हुआ। अंग्रेजों की राजनीतिक महत्वाकांक्षा तथा चेष्टा भी इसी व्यापार की रक्षा और वृद्धि के लिए हुई थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले इंग्लैंड का भारत पर बहुत कम अधिकार था और पश्चिमी सभ्यता तथा संस्थाओं का प्रभाव यहां नहीं के बराबर था। सन् 1750 से पूर्व इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति भी नहीं आरंभ हुई थी। उसके पहले भारत वर्ष की तरह इंग्लैंड भी एक कृषिप्रधान देश था। उस समय इंग्लैंड को आज की तरह अपने माल के लिए विदेशों में बाजार की खोज नहीं करनी पड़ती थी। उस समय गमनागमन की सुविधाएं न होने के कारण सिर्फ हल्की-हल्की चीजें ही बाहर भेजी जा सकती थीं। भारतवर्ष से जो व्यापार उस समय विदेशों से होता था, उससे भारत को कोई आर्थिक क्षति भी नहीं थी। सन् 1765 में जब ईस्ट इंडिया कंपनी को मुगल बादशाह शाह आलम से बंगाल, बिहार और

उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई, तब से वह इन प्रांतों में जमीन का बंदोबस्त और मालगुजारी वसूल करने लगी। इस प्रकार सबसे पहले अंग्रेजों ने यहां की मालगुजारी की प्रथा में हेर-फेर किया। इसको उस समय पत्र-व्यवहार की भाषा फारसी थी। कंपनी के नौकर देशी राजाओं से फारसी में ही पत्र व्यवहार करते थे।

फौजदारी अदालतों में काजी और मौलवी मुसलमानी कानून के अनुसार अपने निर्णय देते थे। दीवानी की अदालतों में धर्मशास्त्र और शहर अनुसार पंडितों और मौलवियों की सलाह से अंग्रेज कलेक्टर मुकदमों का फैसला करते थे। जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने शिक्षा पर कुछ व्यय करने का निश्चय किया, तो उनका पहला निर्णय अरबी, फारसी और संस्कृत शिक्षा के पक्ष में ही हुआ। बनारस में संस्कृत कालेज और कलकत्ते में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की गई। पंडितों और मौलवियों को पुरस्कार देकर प्राचीन पुस्तकों के मुद्रित कराने और नवीन पुस्तकों के लिखने का आयोजन किया गया। उस समय ईसाइयों को कंपनी के राज में अपने धर्म के प्रचार करने की स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी।

बिना कंपनी से लाइसेंस प्राप्त किए कोई अंग्रेज न भारतवर्ष में आकर बस सकता था और न जायदाद खरीद सकता था। कंपनी के अफसरों का कहना था कि यदि यहां अंग्रेजों को बसने की आम इजाजत दे दी जाएगी तो उससे विद्रोह की आशंका है; क्योंकि विदेशियों के भारतीय धर्म और रस्म-रिवाज से भली -भांति परिचित न होने के कारण इस बात का बहुत भय है कि वे भारतीयों के भावों का उचित आदर न करेंगे। देशकी पुरानी प्रथा के अनुसार कंपनी अपने राज्य के हिंदू और मुसलमान धर्म स्थानों का प्रबंध और निरीक्षण करती थी। मंदिर, मस्जिद, इमामबाड़े और खानकाह के आय-व्यय का हिसाब रखना, इमारतों की मरम्मत कराना और पूजा का प्रबंध, यह सब कंपनी के जिम्मे था। अठारहवीं शताब्दी के अंत से इंग्लैंड के पादरियों ने इस व्यवस्था का विरोध करना शुरू किया। उनका कहना था कि ईसाई होने के नाते कंपनी विधर्मियों के धर्म स्थानों का प्रबंध अपने हाथ में नहीं ले सकती। वे इस बात की भी कोशिश कर रहे थे कि ईसाई धर्म के प्रचार में कंपनी की ओर से कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

उस समय देशी ईसाइयों की अवस्था बहुत शोचनीय थी। यदि कोई हिंदू या मुसलमान ईसाई हो जाता था तो उसका अपनी जायदाद और बीवी एवं बच्चों पर कोई हक नहीं रह जाता था। मद्रास के अहाते में देशी ईसाइयों को बड़ी-बड़ी नौकरियां नहीं मिल सकती थीं। इनको भी हिंदुओं के धार्मिक कृत्यों के लिए टैक्स देना पड़ता था। जगन्नाथ जी का रथ खींचने के लिए रथ यात्रा के अवसर पर जो लोग बेगार में पकड़े जाते थे उनमें कभी-कभी ईसाई भी होते थे। यदि वे इस बेगार से इनकार करते थे तो उनको बेंत लगाए जाते थे। इंग्लैंड के पादरियों का कहना था कि ईसाइयों को उनके धार्मिक विश्वास के प्रतिकूल किसी काम के करने के लिए विवश नहीं करना चाहिए और यदि उनके साथ कोई रियायत नहीं की जा सकती तो कम से कम उनके साथ वहीं व्यवहार होना चाहिए जो अन्य धर्मावलंबियों के साथ होता है। धीरे-धीरे इस दल का प्रभाव बढ़ने लगा और अन्त में ईसाई पादरियों की मांग को बहुत कुछ अंश में पूरा करना पड़ा। उसके फलस्वरूप अपनी जायदाद से हाथ नहीं धोना पड़ेगा।

ईसाइयों को धर्म प्रचार की भी स्वतंत्रता मिल गई। 1835 में राज दरबार की भाषा अंग्रेजी हो गई और अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन देने का निश्चय हुआ। धर्म-शास्त्र और शरह का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया और एक 'ला कमीशन' नियुक्त कर एक नया दंड विधान और अन्य नए कानून तैयार किए गए। सन् 1853 ई. में धर्म स्थानों का प्रबंध स्थानीय समितियां बनाकर उनके सुपुर्द कर दिया गया। सन् 1854 में अदालतों में जो थोड़े-बहुत पंडित और मौलवी बच गए थे वे भी हटा दिए गए। इस प्रकार देश की पुरानी संस्थाएं नष्ट हो गईं और हिंदू और मुसलमानों की यह धारणा होने लगी कि अंग्रेज उन्हें ईसाई बनाना चाहते हैं। इन्हीं परिवर्तनों का और डलहौजी की हड़पने की नीति का यह फल हुआ कि सन् 1857 में एक बड़ी क्रांति हुई जिसे सिपाही विद्रोह कहते हैं।

सन् 1857 के पहले ही यूरोप में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी। इस क्रांति में इंग्लैंड सबका अगुआ था; क्योंकि उसको बहुत-सी ऐसी सुविधाएं थीं जो अन्य देशों को प्राप्त नहीं थी। इंग्लैंड ने ही भाप के इंजन का आविष्कार किया। भारत के व्यापार से इंग्लैंड की पूंजी बहुत बढ़ गई थी। उसके पास लोहे और कोयले की अधिकता थी। कुशल कारीगरों की भी कमी न थी। इस नानाविध कारणों से इंग्लैंड इस क्रांति में अग्रणी बना। इंग्लैंड के उत्तरी हिस्से में जहां लोहा तथा कोयला निकलता था वहां कल कारखाने स्थापित होने लगे। कारखानों के पास शहर बसने लगे। इंग्लैंड के पारम्परिक घरेलू उद्योग-धंधे

नष्ट हो गए। मशीनों से बड़े पैमाने पर माल तैयार होने लगा। इस माल की खपत यूरोप के अन्य देशों में होने लगी। देखा-देखी यूरोप के अन्य देशों में भी मशीन के युग का आरंभ हुआ। ज्यों-ज्यों यूरोप के अन्य देशों में नई प्रथा के अनुसार उद्योग व्यवसाय की वृद्धि होने लगी, त्यों-त्यों इंग्लैंड को अपने माल के लिए यूरोप के बाहर बाजार तलाश करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। भारतवर्ष इंग्लैंड के अधीन था, इसलिए राजनीतिक शक्ति के सहारे भारतवर्ष को सुगमता के साथ अंग्रेजी माल का एक अच्छा-खासा बाजार बना दिया गया।

उपसंहार

बीसवीं शताब्दी के पाँचवे दशक में भारतवर्ष में अग्रेजों की बहुत बड़ी पूँजी लगी हुई थी। पिछले पचास-साठ वर्षों में इस पूँजी में बहुत तेजी के साथ वृद्धि हुई। 634 विदेशी कंपनियां भारत में इस समय कारोबार कर रही थीं। इनकी वसूल हुई पूंजी लगभग साढ़े सात खरब रुपया थी और 5194 कंपनियां ऐसी थीं जिनकी रजिस्ट्री भारत में हुई थी और जिनकी पूंजी 3 खरब रुपया थी। इनमें से अधिकतर अंग्रेजी कंपनियां थीं। इंग्लैंड से जो विदेशों को जाता था उसका दशमांश प्रतिवर्ष भारत में आता था। वस्त्र और लोहे के व्यवसाय ही इंग्लैंड के प्रधान व्यवसाय थे और ब्रिटिश राजनीति में इनका प्रभाव सबसे अधिक था। भारत पर इंग्लैंड का अधिकार बनाए रखने में इन व्यवसायों का सबसे बड़ा स्वार्थ था; क्योंकि जो माल ये बाहर रवाना करते थे उसके लगभग पंचमांश की खपत भारतवर्ष में होती थी। भारत का जो माल विलायत जाता था उसकी कीमत भी कुछ कम नहीं थी। इंग्लैंड प्रतिवर्ष चाय, जूट, रुई, तिलहन, ऊन और चमड़ा भारत से खरीदता था। यदि केवल चाय का विचार किया जाए तो 36 करोड़ रुपया होगा। इन बातों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों इंग्लैंड का भारत में आर्थिक लाभ बढ़ता गया त्यों-त्यों उसका राजनीतिक स्वार्थ भी बढ़ता गया ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1] जैन, हुकम चन्द (2003-04) भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोश : जयपुर जैन प्रकाशन मंदिर,

[2] झा. ओ.पी. (अनु.) (2014) कौटिल्य का अथशास्त्र, वित्तीय प्रबंधन और आर्थिक प्रशासन के मार्ग : मुंबई जयको पब्लिशिग हाउस

[3] टण्डन डॉ. किरण. (1990). संस्कृत साहित्य में राजनीति श्री कृष्ण और चाणक्य के संदर्भ में : नई दिल्ली. ईस्टर्न बुक लिंकर्स

[4] डॉ. धरमवीर (1996) कौटिल्य का सामाजिक वैर : दिल्ली. संगीता प्रकाशन, शाहदरा

[5] दिक्षितर, वी.आर.आर (1932). हिन्दू एडिमनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स : मद्रास. यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास

[6] दिनकर, रामधारी सिंह (2015). संस्कृति के चार अध्याय : इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन

[7] नाराणी प्रकाश नारायण (2003) आधुनिक भारत के राजनीतिक विचारक : जयपुर. पोइन्टर पब्लिशर्स

[8] नारायण डॉ. इकबाल (2005). भारतीय राजनीतिक विचारक : जयपुर . ग्रंथ विकास

[9] निरंजन, हरिओम शरण (2009). कौटिलीय अर्थशास्त्र (आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता) : इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली